आंबेडकर पथ । वर्ष : 1 । अंक : 01 । जनवरी-जून 2024 । ISSN : 3048-7781

इस्लाम में सामाजिक व्यवस्था और डॉ. बी.आर. आंबेडकर की दृष्टि

–डॉ. शिव पूजन प्रसाद पाठक'

सारांश :

स्वाधीनता आंदोलन के समय भारत की सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन खोजा जा रहा था लेकिन इस्लाम की सामाजिक व्यवस्था इससे बाहर ही रही। इस्लाम का राजनीतिक और धार्मिक नेतृत्व अपने समाज को बंधनों और जकड़नों में ही रखा। अर्थात् इस्लाम के अन्दर की सामाजिक कुरीतियों पर न्यूनतम या न के बराबर चर्चा हुई। लेकिन डॉ. आंबेडकर ने भारत के इस्लामिक समाज में व्याप्त कुरीतियों पर अच्छे से लिखा है। यद्यपि डॉ. आंबेडकर इस्लाम की सामाजिक व्यवस्था को भारत के विभाजन के संदर्भ में लिख रहे थे लेकिन उनकी कुछ बातें आज भी अक्षरशः सत्य हैं। आज के संदर्भ में प्रधानमंत्री मोदी पसमांदा मुस्लिम समाज के विकास की बात कर रहे हैं तो समझना आवश्यक है कि मुस्लिम समाज में पसमांदा कौन हैं और क्या चाहते हैं? साथ में, पसमांदा की मूल अवधारणा क्या है? प्रस्तुत लेख में वर्तमान संदर्भ में डॉ. आंबेडकर के विचारों और अंतर्दृष्टि की सहायता से भारत में मुस्लिम समाज में व्याप्त कुरीतियों की चर्चा और संविधान सम्मत समाधान खोजने की कोशिश करेंगे।

की वर्ड : इस्लाम, पसमांदा, सामाजिक व्यवस्था, स्त्रियाँ व उनकी चुनौतियाँ

भारत का स्वाधीनता आंदोलन राजनीतिक आंदोलन के साथ-साथ एक सामाजिक आंदोलन था। भारतीय समाज में आए सामाजिक विचलनों के सुधारने का यह एक प्रयास

सह-आचार्य, डॉ. आंबेडकर इण्टरनेशनल सेंट, जनपथ, नई दिल्ली-110001
Email : shivpolscience@gmail.com

भी था। विस्तृत और विशाल भूभाग होने के कारण अनेक प्रकार की सामाजिक विविधताएँ भी थीं। धार्मिक विविधता उनमें से एक है। भारत में हिन्दू, बौद्ध, जैन व अन्य मतावलम्बी थे। इस्लामिक आक्रांताओं ने भारत में इस्लाम को प्रचारित किया और लगभग 800 वर्षों में मतान्तरण के माध्यम से इस्लाम को बनाने वालों की प्रभावी संख्या हो गई।

डॉ. आंबेडकर कहते हैं कि हिंदू समाज के दोषों को व्यक्त करने वाली सामाजिक बुराइयाँ सर्वविदित हैं। मिस मेयो द्वारा प्रकाशित 'मदर इंडिया' में इन बुराइयों का विस्तार से विवेचन किया गया है। परंतु 'मदर इंडिया' ने जहाँ इन बुराइयों को उजागर करने का सोद्देश्य कार्य किया है और इनके प्रवर्तकों को विश्व न्याय संघ के सामने अपने पापों का उत्तर देने के लिए आहूत किया है। उससे दुर्भाग्यवश विश्व में यह धारण भी बनी है कि जबकि हिंदू इन सामाजिक बुराइयों के कीचड़ में फंसकर पतोन्मुख हो रहा है, वहाँ भारतीय मुसलमान उनसे मुक्त हैं और हिंदुओं की तुलना में अधिक प्रगतिशील हैं। ऐसी धारणा का बनना उन लोगों के लिए आश्चर्यजनक ही है जो भारत में मुस्लिम समाज को बहुत पास से जानते हैं। कोई भी यह प्रश्न पूछ सकता है कि क्या कोई ऐसी सामाजिक बुराई है जो हिंदुओं में तो है, लेकिन मुसलमानों में नहीं पाई जाती है? डॉ. आंबेडकर ने इसी प्रश्न की खोज अपनी पुस्तक 'भारत का विभाजन' पुस्तक में की है।

सामाजिक व्यवस्था

भारतीय समाज श्रम विभाजन पर आधारित था जो कालांतर में व्यवसाय वंशानुगत होने के कारण जातीय संरचना में बदल गया है। कास्ट शब्द पुर्तगाली शब्द है और भारतीय श्रम की सही व्याख्या नहीं करता है। चूंकि प्रचलन में होने के कारण जाति के माध्यम से ही समाज की व्याख्या हो रही है। जातीय व्यवस्था के अनुसार समाज में व्यक्ति का स्थान उसकी जाति के आधार पर निर्धारित किया जाता है। इस विभाजन में एक पदसोपनात्मकता है। यह श्रेणीगत है जिससे असमानता है। आज की संवैधानिक व्यवस्था में जाति को मुख्यतया चार श्रेणियों में समूहीकृत कर दिया गया है जिन्हें सामान्य वर्ग, पिछड़ा वर्ग व अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के नाम से संबोधित किया जाता है। जाति भारतीय समाज का एक सच है। यह व्यक्ति के व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन दोनों को प्रभावित करने की क्षमता रखती है।

डॉ. आंबेडकर ने जाति की दृष्टि से हिन्दू समाज की विस्तृत व्याख्या की है और उसे सामाजिक न्याय के रूप में संविधान में स्वीकार किया गया है। इसलिए वे इस्लाम की जाति का भी विश्लेषण करते हैं। उनके अनुसार हर व्यक्ति यही अनुमान लगाता है कि इस्लाम दास प्रथा और जाति प्रथा से मुक्त होगा। गुलामी के बारे में तो कहने की

आवश्यकता ही नहीं। आंबेडकर कहते हैं कि इस्लाम में भी जातियाँ हैं। इसके लिए वे बंगाल का उदाहरण देते हैं। वे कहते हैं, ''मुसलमानों का चार वर्गों—शेख, सैयद, मुगल और पठान—में परंपरागत विभाजन इस प्रांत (बंगाल) में प्रायः लागू नहीं है। मुसलमान दो मुख्य सामाजिक विभाजन मानते हैं— 1. अशरफ अथवा शरफ और 2. अजलफ।

अशरफ से तात्पर्य है कुलीन और इसमें विदेशियों के वंशज तथा ऊँची जाति के हिन्दू शामिल हैं। शेष अन्य मुसलमान, जिनमें व्यावसायिक वर्ग और निचली जातियों के धर्मांतरित शामिल हैं, उन्हें अजलफ अर्थात् नीचा अथवा निकृष्ट व्यक्ति माना जाता है। उन्हें कमीना अथवा इतर कमीन या रासिल, जो रिजाल का भ्रष्ट रूप है, बेकार कहा जाता है। कुछ स्थानों पर एक तीसरा वर्ग 'अरजल' भी है, जिसमें आने वाले व्यक्ति सबसे नीचे समझे जाते हैं। उनके साथ कोई भी अन्य मुसलमान मिलेगा-जुलेगा नहीं और न उन्हें मस्जिद और सार्वजनिक कब्रिस्तानों में प्रवेश करने दिया जाता है।

इन वर्गों में भी हिंदुओं में प्रचलित जैसी सामाजिक वरीयता और जातियाँ हैं।

1. अशरफ अथा उच्च वर्ग के मुसलमान

(i) सैयद
(ii) शेख
(iii) पठान
(iv) मुगल
(v) मलिक
(vi) मिर्जा

2. अजलफ अथवा निम्न वर्ग के मुसलमान

(i) खेती करने वाले शेख और अन्य वे लोग जो मूलतः हिन्दू थे, किंतु किसी बुद्धिजीवी वर्ग से संबंधित नहीं हैं और जिन्हें अशरफ समुदाय, अर्थात् पिराली और ठकराई आदि में प्रवेश नहीं मिला है।

(ii) दर्जी, जुलाहा, फकीर और रंगरेज।

(iii) बाढ़ी भटियारा, चिक, चूड़ीदार, दाई, धावा, धुनिया, गड्डी, कलाल, कसाई, कुला, कुंजरा, लहेरी, माहीफरोश, मल्लाह, नालिया, निकारी।

(iv) अब्दाल, बाको, बेडियाँ, भाट, चंबा, डफाली, धोबी, हज्जाम, मुचो, नगारची, नट, पनवाड़िया, मदारिया, तुन्तिया।

3. अरजल अथवा निकृष्ट वर्ग

भानार, हलालखोदर, हिजड़ा, कसबी, लालबेगी, मोगता, मेहतर।

आंबेडकर जिस जनसंख्या के प्रतिवेदन के माध्यम से यह बात लिख रहे हैं, वही प्रतिवेदन लिखता है, ''पंचायत का प्राधिकार सामाजिक तथा व्यापार संबंधी मामलों तक व्याप्त है और ...अन्य समुदायों के लोगों से विवाह एक ऐसा अपराध है, जिस पर शासी निकाय कार्रवाई करता है। परिणामतः ये वर्ग भी हिन्दू जातियों के समान ही प्रायः कठोर संगोती हैं, अंतर-विवाह पर रोक ऊँची जातियों से लेकर नीची जातियों तक लागू है। उदाहरणतः कोई धूमा अपनी ही जाति अर्थात् धूमा में ही विवाह कर सकता है। यदि इस नियम की अवहेलना की जाती है तो ऐसा करने वाले को तत्काल पंचायत के समक्ष पेश किया जाता है। एक जाति का कोई भी व्यक्ति आसानी से किसी दूसरी जाति में प्रवेश नहीं ले पाता और उसे अपनी उसी जाति का नाम कायम रखना पड़ता है, जिसमें उसने जन्म लिया है। यदि वह अपना विशिष्ट पेशा त्यागकर जीवनयापन के लिए कोई अन्य साधन भी अपना लेता है, तब भी उसे उसी समुदाय का माना जाता है, जिसमें कि उसने जन्म लिया था ...हजारों जुलाहे कसाई का धंधा अपना चुके हैं। किंतु वे अब भी जुलाहे ही कहे जाते हैं।

मुसलमानों में जाति प्रथा ही नहीं, छुआछूत भी प्रचलित है। इस तरह से यह असंदिग्ध रूप से स्पष्ट है कि भारत में मुस्लिम समाज भी हिंदू समाज में प्रचलित सामाजिक बुराइयों से अछूता नहीं है। मसलन एक है।

पारिवारिक व्यवस्था

सामाजिक व्यवस्था के साथ इस्लाम की पारिवारिक व्यवस्था को भी कुरीति के रूप में देखते हैं। मुस्लिम पर्सोनल लॉ से शासित होने के कारण मुस्लिम समाज द्वारा विवाह के लिए कोई न्यूनतम आयु सीमा निर्धारित नहीं की गई है। बाबासाहेब के अनुसार यह मुस्लिम समाज की सबसे बड़ी सामाजिक कुरीति है। स्त्री के विवाह की न्यूनतम आयु निर्धारित न होने के कारण वह शोषित है। दूसरे मुसलमानों में विवाह एक अनुबंध है, स्त्री की स्थिति दयनीय बनती है। तीसरे, मुस्लिम कानून में यह व्यवस्था है कि पत्नी अपने को समर्पित करने के एवज में धन अथवा संपत्ति पति से माँग सकती है, जिसे उसके 'मेहर' के तौर पर जाना जाता है। मेहर (एक प्रकार का दहेज) का निर्धारण विवाह के बाद भी किया जा सकता है, और यदि कोई राशि निर्धारित नहीं की गई है तो भी पत्नी समुचित मेहर की हकदार है।

इस्लाम में स्त्रियों की हीनता पर कुरान सहमति दे देता है। उसे आत्म अभिव्यक्ति और व्यक्तित्व के अवसरों से वंचित कर देता है। तलाक के मामले में ऐसी उदारता से सुरक्षा की वह अनुभूति नष्ट हो जाती है जो एक महिला के पूर्णतः मुक्त और सुखद

जीवन की परमावश्यक आधारशिला है। मुस्लिम महिला के जीवन की यह असुरक्षा उस समय और अधिक बढ़ जाती है, जब उसके पति को बहु विवाह करने और रखैल रखने का कानूनन अधिकार प्राप्त हो जाता है।

मुस्लिम कानून मुसलमानों को चार महिलाओं से एक समय पर विवाह करने की अनुमति देता है। इसे इसलिए कोई असामान्य बात नहीं कहा जाता कि यह व्यवस्था उस हिंदू कानून की तुलना में अधिक प्रगतिशील है जिसमें किसी हिंदू पर इस मामले में कोई रोक नहीं है कि वह कितनी ही पत्नियाँ रख सकता है। परंतु इस तथ्य को विस्मृत कर दिया जाता है कि चार कानूनी पत्नियों के अलावा मुस्लिम कानून एक मुसलमान को अपनी महिला गुलामों से भी सहवास करने की अनुमति देता है। महिला गुलामों की संख्या के बारे में उस कानून में कुछ भी नहीं बताया गया है। उसे यह भी अधिकार है कि वह बिना किसी रुकावट अथवा कृतज्ञता के उन गुलामों को अपने साथ रख सकता है। उस पर यह बंधन भी नहीं है कि वह उनसे विवाह करे।

बहु विवाह करने तथा रखैल रखने की प्रथा विशेष रूप से मुस्लिम महिला के लिए जिस तरह दुःखदायी है, उसका तथा उसके कारण जो अनेक बुराइयाँ जन्मती हैं, उनका समुचित रूप से वर्णन करने के लिए शब्द नहीं मिले वे श्री जॉन जे.एल., जो इस्लाम के शत्रु नहीं हैं, के कथन को उद्धृत करते हुए कहते हैं–

> ''तलाक के मामले में इस छूट का कुछ मुसलमान बहुत अधिक लाभ उठाते हैं। स्टोवार्ट ने इस विषय पर टिप्पणी करते हुए अपनी पुस्तक 'इस्लाम एंड इट्स फाउंडर' में कहा है–कुछ मुसलमानों ने लगातार अपनी बीवियाँ बदलते रहना अपनी आदत बना ली है। हमने ऐसे नौजवानों के बारे में पढ़ा है जिनकी बीस और तीस पत्नियाँ हैं। हर तीसरे-चौथे महीने वे एक नई बीवी ले आते हैं, और इस प्रकार ऐसा होता है कि एक पुरुष से दूसरे पुरुष तक महिलाओं को हस्तांतरित करने का निरंतर एक सिलसिला चलता रहता है। उन महिलाओं को कभी एक को पति मानना पड़ता है, तो कभी दूसरे घर का द्वार देखना पड़ता है, अथवा बेसहारा या निराश्रित स्थिति को झेलते हुए तलाक दे दिए जाने का परिणाम भुगतती रहती हैं। जीवनयापन के लिए ऐसे में वह कुछ दूसरे अधिक तुच्छ और निम्न साधनों का सहारा लेती हैं इस तरह कानून का अक्षरशः पालन करते हुए और संभवतः एक अथवा निश्चित रूप से चार, से अधिक पत्नियाँ न रखते हुए भी घृणित चरित्र वाले लोग तलाक का सहारा लेकर अपने जीवन-काल में चाहे जितनी पत्नियाँ रख सकते हैं।''

एक दूसरे तरीके से भी एक मुसलमान चार से अधिक पत्नियाँ रख सकता है, और फिर भी कानून के अंतर्गत रह सकता है। यह तरीका रखैलों के साथ रहने का है,

जिनकी कुरान ने खुलकर इजाजत दी है। कुरान की जिस सूरा में चार पत्नियाँ रखने की अनुमति है, ये शब्द भी हैं—जिन दासियों को तुमने प्राप्त किया है। फिर 70वीं सूरा में यह बताया गया है कि दासियों के साथ रहना कोई पाप नहीं है। वे शब्द ये हैं—वे गुलाम जिन पर उनके दाहिने हाथ का अधिकार उनके दोष का कारण नहीं होंगे। अतीत के समान ही आजकल भी बड़ी संख्या में मुस्लिम परिवारों में गुलाम (दासियाँ) पाई जाती हैं। जैसा कि मुइर ने अपनी पुस्तक 'लाइफ ऑफ मोहम्मद' में कहा है—"जब तक दासियों के साथ रहने की यह असीम अनुमति उन्हें प्राप्त रहेगी, तब तक यह आशा नहीं की जा सकती कि मुस्लिम देशों में गुलाम रखने की प्रथा पर रोक का कोई हार्दिक प्रयास होगा। इस तरह गुलामी के मामले में कुरान मानवता की शत्रु है, और महिलाएं सामान्यतः सर्वाधिक उत्पीड़ित हैं।"

अनिवार्य पर्दा प्रथा

मुस्लिम महिलाओं के लिए अनिवार्य पर्दा प्रथा। पर्दा प्रथा के परिणामस्वरूप मुस्लिम महिलाओं का अलगाव सुनिश्चित है। महिलाओं से यह अपेक्षा की जाती है कि वे बाहर के कमरों, बरामदों और बगीचों में न आएं। उनका निवास मकान के पिछले भाग में होता है। सभी महिलाओं को चाहे वे जवान हों या वृद्धा एक ही कमरे में रहना पड़ता है। कोई भी पुरुष नौकर उनकी उपस्थिति में काम नहीं कर सकता। महिला को अपने पुत्रों, भाइयों, पिता, चाचा और पति अथवा किसी ऐसे ही नजदीकी रिश्तेदार का देखने की अनुमति है, वही विश्वासपात्र होने पर घर में प्रवेश पा सकता है। वह इबादत के लिए मस्जिद में भी नहीं जा सकती और जब कभी उसे बाहर जाना होता है तो बुर्का ओढ़ना पड़ता है। ऐसी पृथकता का मुस्लिम महिलाओं के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़े बिना नहीं रह पाता। वे प्रायः खून की कमी, क्षयरोग, पायरिया और कतिपय अन्य रोगों से पीड़ित हो जाती हैं। उनके शरीर में भी सुघड़ता नहीं रहती, उनकी कमर झुकती जाती है, हड्डियाँ निकल आती है, हाथ और पांव में खम पड़ जाता है, वे कुरूप हो जाती हैं। पसलियों, जोड़ों और प्रायः सभी हड्डियों में दर्द रहता है। उनके हृदय की धड़कन बढ़ने का सिलसिला भी प्रायः पाया जाता है। इन सभी कमजोरियों के फलस्वरूप, प्रसूतिकाल में उनकी मृत्यु हो जाती है। पर्दा प्रथा के कारण मुस्लिम महिलाओं का मानसिक और नैतिक विकास नहीं होता। स्वस्थ सामाजिक जीवन से वंचित रहने से उनमें अनैतिकता की प्रवृत्ति आ जाती है। बाहरी दुनिया से पूर्णतः अलग-थलग रहने के कारण उनका ध्यान तुच्छ पारिवारिक झगड़ों में उलझा रहता है। फलस्वरूप वे अपनी सोच में संकीर्ण हो जाती हैं और उनका दृष्टिकोण भी संकुचित हो जाता है।

वे अन्य जातियों की बहनों से पिछड़ जाती हैं। वे किसी बाह्य गतिविधि में भाग नहीं ले पातीं और उनमें एक प्रकार की दासता और हीनता की मनोवृति बनी रहती है। उनमें ज्ञान प्राप्ति की इच्छा भी नहीं रहतीं, क्योंकि उन्हें यही सिखाया जाता है कि घर की चारदीवारी के बाहर वे अन्य किसी बात में रुचि न लें। पर्दे वाली महिलाएं प्रायः डरपोक, निसहाय, शर्मीली और जीवन में किसी भी प्रकार का संघर्ष करने के अयोग्य हो जाती हैं। भारत के मुसलमानों में पर्दा करने वाली महिलाओं की विशाल संख्या को देखते हुए कोई भी आसानी से यह समझ सकता है कि पर्दे की समस्या कितनी व्यापक और गंभीर है।''

आंबेडकर इसी क्रम में लिखते हैं कि पर्दे का शारीरिक और बौद्धिक प्रभाव भौतिक प्रभाव के मुकाबले काफी कम पड़ता है। वस्तुतः पर्दा प्रथा दो मूल पुरुष और महिला दोनों में ही यौन संबंधी इच्छा को लेकर गहन संदेश में निहित है और इसका उद्देश्य स्त्री-पुरुष दोनों को अलग रखकर रोकना ही है। परंतु इस उद्देश्य की प्राप्ति के बजाय पर्दा प्रथा ने मुस्लिम पुरुषों की नैतिकता पर विपरीत प्रभाव डाला है। पर्दा प्रथा के कारण कोई मुसलमान अपने घर-परिवार से बाहर की महिलाओं से कोई परिचय नहीं कर पाता है। घर की महिलाओं से भी उसका संपर्क यदा-कदा बातचीत तक ही सीमित रहता है। बच्चों अथवा वृद्धों के अलावा, पुरुष अन्य महिलाओं से हिल-मिल नहीं सकते, अंतरंग साथी से भी नहीं मिल पाते। महिलाओं से पुरुषों की यह पृथकता निश्चित रूप से पुरुष के नैतिक बल पर विकृत प्रभाव डालती हैं। यह कहने के लिए किसी मनोवैज्ञानिक की आश्यकता नहीं कि ऐसी सामाजिक प्रणाली से, जो पुरुषों और महिलाओं के बीच के संपर्क काट दे, यौनाचार के प्रति ऐसी अस्वस्थ प्रवृत्ति का सृजन होता है जो अप्राकृतिक एवं अन्य दूषित आदतों और साधनों को अपनाने के लिए प्रेरित करती है।

ऐसा नहीं है कि पर्दा और ऐसी ही अन्य बुराइयाँ देश के कुछ भागों में हिंदुओं के कई वर्गों में प्रचलित नहीं हैं। परंतु अंतर केवल यही है कि मुसलमानों में पर्दा प्रथा को एक धार्मिक आधार पर मान्यता दी गई है जबकि हिंदुओं में ऐसी स्थिति नहीं है। हिंदुओं की अपेक्षा मुसलमानों में पर्दा प्रथा की जड़ें गहरी हैं और उसे सामाजिक आवश्यकताओं और धार्मिक अंकुशों के बीच अनिवार्य संघर्ष को झेलकर ही समाप्त किया जा सकता है। मुसलमानों में पर्दा प्रथा अपने मूल के अलावा, एक वास्तविक समस्या है जबकि हिंदुओं में नहीं है। मुसलमानों ने इसे समाप्त करने का कभी प्रयास किया हो, इसका भी कोई साक्ष्य नहीं मिलता।

इस तरह भारत के मुस्लिम समुदाय के सामाजिक जीवन में ही नहीं बल्कि राजनीतिक जीवन में भी एक प्रकार की गतिहीनता है। मुसलमानों को राजनीति में रुचि कम है। उनकी मजहब में ही अधिक रुचि है। मुस्लिम राजनीति अनिवार्यतः मुल्लाओं की राजनीति है और

वह मात्रा एक अंतर को ही मान्यता देती है हिंदू और मुसलमानों के बीच मौजूद अंतर। जीवन के किसी भी धर्मनिरपेक्ष तत्त्व का मुस्लिम समुदाय की राजनीति में कोई स्थान नहीं है और वे मुस्लिम राजनीतिक जमात के केवल एक ही निर्देशक सिद्धांत के सामने नतमस्तक होते हैं, जिसे मजहब कहा जाता है। मुसलमानों में इन बुराइयों का होना दुःखद है। किंतु उससे भी अधिक दुःखद तथ्य यह है कि भारत के मुसलमानों में समाज-सुधार का ऐसा कोई संगठित आंदोलन नहीं उभरा जो इन बुराइयों का सफलतापूर्वक उन्मूलन कर सके। हिंदुओं में भी अनेक सामाजिक बुराइयाँ हैं। मुसलमान यह महसूस ही नहीं करते कि ये बुराइयाँ हैं। परिणामतः वे उनके निवारण हेतु सक्रियता भी नहीं दर्शाते। इसके विपरीत अपनी मौजूदा प्रथाओं में किसी भी परिवर्तन का विरोध करते हैं।

निष्कर्ष

मुस्लिम समाज की सबसे बड़ी सामाजिक समस्या है कि वह आज भी भारत के संविधान से शासित नहीं होना चाहता है। मस्लिम पर्सनल लॉ ही मुस्लिम समाज का सबसे बड़ा शत्रु है। मुस्लिम समाज ने अपनी पहचान को धर्म के आधार पर ही निर्मित किया है। परिणामस्वरूप समाज में व्याप्त कुरीतियों पर चर्चा ही नहीं हुई। सत्य यह है कि भारतीय प्रायद्वीप में सामाजिक वर्गीकरण में जाति एक तथ्य था। इस्लाम को अपनाने के कारण भी मतांतरित लोगों में जातीय व्यवस्था बनी रही। इसलिए इस्लाम में भी जाति है और इसमें भी वर्ग है। किसी प्रकार के सामाजिक न्याय के लिए इस तथ्य की अपेक्षा नहीं की जा सकती है। पसमान्दा आंदोलन इन सभी विषयों को विमर्श में लाने का प्रयास कर रहा है। यह आंदोलन स्वीकार करता है कि मुसलमानों में जातियाँ हैं और उसमें पदानुक्रम व्यवहार है।

*(लेख का सम्पूर्ण मौलिक विचार डॉ. आंबेडकर की पुस्तक 'पाकिस्तान अथवा भारत का विभाजन' पर आधारित है और यह लेख उसका संक्षेपण है जो 'बाबासाहेब डॉ. आंबेडकरः सम्पूर्ण वाङ्मय' खंड-15 के रूप में डॉ. आंबेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली से प्रकाशित है।)